इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

गायत्री बाग
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
रमा देवी महिला विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर,ओड़िशा

शोध सार : इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में समाज के विभिन्न विषयों जैसे- जातिवाद, वर्ग संघर्ष, सांस्कृतिक बदलाव, सामाजिक असमानता और लैंगिक भेदभाव को केंद्र में रखकर समाज की सच्चाई और वास्तविकता को दर्शाते हुए मूल उद्देश्य यानि समाज को जागृत करना है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में समाज, संस्कृति और मानवता की जटिलताओं को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषित कर समाज में एकता और अखण्डता स्थापित करना है। इन उपन्यासों की विषयवस्तु समाज के परिवर्तन, संघर्ष और चुनौतीपूर्ण मुद्दों को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करती है। साथ ही यह भी देखा जाता है कि लेखकों ने अपनी रचनाओं में समाज के बदलते परिवेश और नई समस्याओं को एक नए तरीके से दर्शाया है। जो समाज को एक नई दृष्टि मिलती है।

बीज शब्द : इक्कीसवीं सदी, लैंगिक, जातिवाद, एकता, समाजशास्त्र, संस्कृति और अखण्डता।

मूल लेख- किसी भी देश के साहित्य का अध्ययन, चिंतन, विवेचन तथा उसका रसास्वादन तभी संभव है। जब उस देश की जाति, परिवेश, सामाजिक वातावरण, सभ्यता-संस्कृति तथा उस राष्ट्र का राष्ट्रीयता और समसामयिकता की जानकारी हो। फ्रेंच विद्वान तेन महोदय द्वारा दिया गया विधेयवादी पद्धति को तीन शब्दों के माध्यम से स्पष्ट किया था- जाति, वातावरण, क्षण विशेष।"तेन ने अपनी व्याख्या के द्वारा यह स्पष्ट किया कि किसी भी समाज के साहित्य को समझने के लिए उस साहित्य से सम्बन्धित जातीय परम्पराओं, राष्ट्रीय और सामाजिक वातावरण एवं सामयिक परिस्थितियों का अध्ययन विश्लेषण आवश्यक है।"[1]

साहित्य और समाज का संबंध परस्पर परिपूरक है। साहित्य और समाज का संबंध की गहराई साहित्य की सैद्धांतिकी से परिलक्षित होता है। साहित्य की सैद्धांतिकी साहित्य की विविध परतों, उद्देश्य तथा उसके प्रभावों को समझने का गहन और विविध दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है जो पाठक वर्ग के लिए साहित्य

के अध्ययन को एक वैज्ञानिक और सरंचित दिशा प्रदान करती है। यह साहित्य को एक कला के रूप में ही नहीं, बल्कि समाज, संस्कृति, राजनीति और मानवता के सन्दर्भ में भी अभिव्यक्ति प्रदान करती है अर्थात यूँ कहें कि साहित्य और समाज दोनों का संबंध घनिष्ठ होते हुए दोनों में अंतर है। साहित्य समाज को प्रतिबिम्बित करता है एवं समाज साहित्य के विकास और दिशा में योगदान देता है।

डॉ॰ नगेन्द्र 'साहित्य का समाजशास्त्र' नामक ग्रन्थ में लिखतें है कि- "कला और समाज के परस्पर सम्बन्ध की उपेक्षा नहीं कि जा सकती क्योंकि कला स्वयं ही एक सामाजिक घटना है। महान कला मानव जीवन की सार्वभौम सत्ता को प्रतिष्ठित करती है, किन्तु इस सार्वभौम रूप की सिद्धि विशेष के द्वारा ही संभव होता है क्योंकि कला का सृष्टा कलाकार या एक विशेष युग एवं समाज, एक विशेष संस्कृति और वर्ण के साथ सम्बन्ध होता है। कला का प्राणतत्व है सामजस्य किन्तु इस सामजस्य के मूल में विशेष और सार्वभौम का द्वन्द्व निहित रहता है। जिसके कारण कला की मूल प्रकृति अनिश्चित एवं परिर्वतनशील बन जाती है।"[2]

साहित्य का मुख्य सरोकार मनुष्य ही है। जिसमें मनुष्य का सामाजिक जगत, मनुष्य के उस जगत के प्रति अनुकूलता तथा उसकी उन्नति के लिए परिवर्तन की इच्छा जो साहित्य में प्रारम्भिक काल से विभिन्न साहित्यिक विधाओं के माध्यम से व्यक्त होती आ रही है। उपन्यास औद्योगिक समाज की प्रमुख साहित्यिक विधा है, जिसमें कल्पना एवं वह कला रूप है, जो नाटकीयता के साथ पात्रों के माध्यम से लिंग, जाति या वर्ग पूर्वाग्रह जैसे सामाजिक समस्या, सामाजिक संरचना, राजनीति एवं शासन के साथ सम्बन्ध तथा सामाजिक जगत के पुनः सृजन का ईमानदार प्रयास को अभिव्यक्ति प्रदान करता है ।

समाजशास्त्र और उपन्यास एक ही युग की समान भौतिक और वैचारिक परिवेश की उपज है । उपन्यास के अंतर्गत ऐसी कला विद्यमान है जो कहानी और महाकाव्य के कलेवर को आत्मसात करता है । अतः पाश्चात्य आलोचक हेगेल ने उपन्यास को गद्य युग का महाकाव्य कहा था । उपन्यास केवल वस्तुगत वर्णन नहीं करता अपितु वह सामाजिक जीवन में गहराई से उतर कर मनुष्य के आन्तरिक सत्यों को तथा मानवीय चरित्र का उद्‌घाटन करता है । फिल्म के बाद उपन्यास ही आधुनिक युग का सर्वाधिक प्रतिनिधि कला का रूप प्रमाणित हुआ। जो समाज, संस्कृति और व्यक्ति के जीवन की जटिलताओं की यथार्थता

को अत्यंत हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति प्रदान करता है। मिशेल जेराफ़ा के अनुसार- "उपन्यास ऐसी कला है जिसमें ऐतिहासिक दृष्टि से निरूपित होकर सामने आता है।"[3]

इक्कीसवीं सदी के भारतीय समाज के बदलते परिदृश्य में हिन्दी उपन्यासों ने साहित्यिक दृष्टिकोण से अपनी एक अलग पहचान बनाते हुए समाज, राजनीति, तकनीक और वैश्वीकरण के प्रभावों को भी अभिव्यक्त किया है। आज के दौर में हिंदी उपन्यासों में विविधता, विषयगत गहराई तथा नए दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं जिसके कारण उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन समाज की जटिलताओं के साथ-साथ सामाजिक समस्याओं और उनके संभावित समाधान को भी सामने रखता है।

चित्रा मुद्गल कृत 'गिलिगडु' उपन्यास में लेखिका 'गैरमौजूदगी' नाम पर तेरह दिनों के वृद्धों के जीवन को केन्द्र में रखती हैं। सभ्य जीवन की पोल खोलते हुए बुजुर्गों की समस्या की जड़ को इस उपन्यास ने मार्मिकता के साथ उभारा है। संतानों का परम कर्तव्य बुजुर्गों को आदर-सम्मान के साथ सुखी रखना परंतु इसका अभाव सर्वत्र परिलक्षित होता है। उपन्यास में बेटा नरेंद्र को पिता जसवंत सिंह की संपत्ति तो चाहिए परंतु पिता की सेवा नहीं करना चाहता है। जसवंत सिंह बेटा-बहू के साथ कदम-कदम पर स्वयं को अपमानित पाता है। वह विवश होकर अपने बेटे से पूछता है - "तुम कभी बूढ़े नहीं होंगे नरेंद्र?"[4] अपनी असहायता से विवश होकर सोचता है -"इस घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं-एक टॉमी, दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह! टॉमी की स्थिति निस्संदेह उनकी बनिसबत मजबूत है।"[5]

मनीषा कुलश्रेष्ठ कृत 'शिगाफ' उपन्यास इक्कीसवीं सदी के पाठक वर्ग के समक्ष आंतकवाद की वजह से कश्मीर से विस्थापित लोगों की पीड़ा को दर्शाता है। इस उपन्यास में कश्मीर और कश्मीरियों की विदीर्ण व्यथा को अलग तरीके से दिखाया गया है। "शिगाफ विस्थापन का दर्द महज एक सांस्कृतिक, सामाजिक विरासत से कट जाने का दर्द नहीं है। बल्कि अपनी खुली जड़े लिए भटकने ओर कहीं जम न पाने की भीषण विवशता है, जिसे अपने निर्वासन के दौरान सेन सबेस्टियन (स्पेन) में रह रही अमिता लगातार अपने ब्लॉग में लिखती रही है। डॉन किहोते की 'रोड दू ला मांचा' कश्मीर वादी में लौटने की अमिता की भटकावों तथा असमंजस भरी इस यात्रा को अद्भुत तरीके से समेटता हुआ। यह उपन्यास विस्थापन और आतंकवाद की कोई व्याख्या या समाधान नहीं प्रस्तुत करता वरन् आस्था-अनास्था की बर्बर लड़ाइयों के बीच कुचले जाने

से रह गए, कुछ जीवट पलों को जिलाता है और जमीन पर गिर पड़े उस दिशा संकेतक बोर्ड को उठाकर फिर-फिर गाड़ता है, जिस पर लिखा है। शिगाफ यानि एक दरार जो कश्मीरियत की रुह में स्थायी तौर पर पड़ गई है।"[6]

अलका सरावगी कृत 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में आज के उत्तर आधुनिकता बोध परिलक्षित होता है। जिसमें आज के कॉरपोरेट जगत की फैली भ्रष्टाचार को उभारा है । इसमें आधुनिक दौर की कथा कहते हुए हमारे समक्ष मनुष्य के बुनियादी सरोकारों को गहराई से प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास समाज की विभिन्न विषयों-मुद्दों पर लेखिका की एक अलग दृष्टि से अवगत कराते हुए कॉरपोरेट वैचारिकता, उसमें धोखाधड़ी आदि की यथार्थ वर्णन किया है। "अंततः आर्थिक सुधार का फायदा गरीबों को होगा। आखिर यह विकास का रास्ता है। ज्यादा नौकरियां होंगी, रूपये का दाम गिरना कम होगा, सामान सस्ता मिलेगा, सेवाओं में ज्यादा लोगों के काम की गुंजाईश होगी। अभी जो पब्लिक सेक्टर और अमीर किसान देश का खून चूस रहे हैं, वह पैसा गरीबों के काम में लगाया जा सकेगा । उसके लिए मुफ्त स्कूल और अस्पताल खोले जा सकेंगे । पूरा देश एक दिन खुशहाल होगा... एक दिन यहां डाल-डाल पर सोने की चिड़ियाँ बसेरा करेगी ।"[7]

'गायब होता देश' उपन्यास की अंतर्वस्तु के विषय में स्वयं लेखक रणेन्द्र का कथन है कि "गायब होता देश की विषयवस्तु आदिवासी मुंडा समुदाय के असह्य शोषण, लूट, पीड़ा, विक्षोभ पर ही केंद्रित है।....आजादी के बाद विकसित देशों के कथित विकास मॉडल ने विस्थापन के वज्र से जो आघात आरंभ किया, उसकी चोट ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थायी बंदोबस्ती, जमींदारी प्रथा से भी ज्यादा गहरी और मारक थी। 1991 ई. के बाद उपभोक्तावादी पूंजीवाद को ज्यादा खनिज, ज्यादा जंगल, ज्यादा जमीन चाहिए। कल तक बाहुबली बिल्डर दबंगई के बल पर अपना पेशा चला रहे थे। नई आर्थिक नीति और 2008 की महामंदी ने रियल एस्टेट को सबसे ज्यादा मुनाफा देने वाले सेक्टर में बदल दिया है। वही रंगदार-बिल्डर अब प्रतिष्ठित कॉरपोरेट हैं। जमीन की लूट की गति हमारे अनुमान से भी ज्यादा तेज है। स्वाभाविक है कि झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा आदि राज्यों में इस सेक्टर का सबसे बड़ा शिकार आदिवासी समुदाय है।....यही जलते प्रश्न नए उपन्यास की अंतर्वस्तु हैं ।"[8]

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो, इन उपन्यासों ने न केवल सामाजिक असमानताओं और संघर्षों को प्रमुखता दी है, बल्कि उन सामाजिक बदलावों और प्रवृत्तियों को भी दर्शाया है जो समाज की पहचान और संरचना को

प्रभावित कर रहे हैं। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में समाज के विभिन्न वर्गों, उनके अनुभवों और संघर्षों की विविधता को सामने लाया गया है, जो साहित्य के माध्यम से समाज के दर्पण के रूप में कार्य करता है।

निष्कर्ष :- यह स्पष्ट होता है कि इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों ने समाज के विभिन्न पहलुओं को नए दृष्टिकोण से उजागर किया है। इन उपन्यासों में समाज के बदलते हुए ढांचे जैसे – परिवेश, शहरीकरण, जातिवाद, लैंगिक असमानता, सामाजिक न्याय और वैश्वीकरण के प्रभावों को बारीकी से चित्रित किया है। लेखकों ने अपने रचनात्मक माध्यम से समाज की समस्याओं को न केवल उद्घाटित किया है, बल्कि उनका गहरा और सार्थक विश्लेषण भी किया है। अंततः यह निष्कर्ष निकलता है कि इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास न केवल साहित्य का भण्डार भरा है, बल्कि समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। यह उपन्यास सामाजिक अंतरविरोधों, जटिलताओं और संघर्षों को समझने का एक प्रभावी माध्यम बन चुका है, जो समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए अनमोल संसाधन प्रस्तुत करते हैं।

संदर्भ सूची:-

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रिया प्रकाशन गोविन्दपुर, इलाहाबाद, संस्करण-2012, पृष्ठ संख्या-02
2. डॉ नगेन्द्र, साहित्य का समाजशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-1990, पृष्ठ संख्या-11
3. मैनेजर पांडेय, साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि, तृतीय संस्करण-2003, पृष्ठ संख्या-247
4. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु,सामयिक प्रकाशन, 2007, पृष्ठ संख्या- 80
5. चित्रा मुद्गल,गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, 2007, पृष्ठ संख्या-96
6. Rajkamal prakashan.com/default/novels/shigaf-1093
7. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, पृष्ठ संख्या-52
8. https://www.apnimaati.com/2016/11/blog-post_6.html?m=1